तत्त्व-विवेचन

(मकार-पञ्चक)

[प्रश्नोत्तर]

प्रकाशक

कल्याण मन्दिर प्रकाशन, प्रयाग-६

तत्त्व-विवेचन

(मकार-पञ्चक)

[प्रश्नोत्तर]

लेखक

'कुलज' स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती

सम्पादक

'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल

प्रकाशक

कल्याण मन्दिर प्रकाशन, प्रयाग-६

प्रकाशक
कल्याण मन्दिर प्रकाशन
अलोपी देवी मार्ग, प्रयाग–६

दूर-भाष : (०५३२) ६६२७८३

द्वितीय संस्करण

आश्विन शुक्ला प्रतिपदा, सं० २०५२ वि०–२५ सितम्बर, १९९५

मूल्य ३-०० रु०

मुद्रक
परा वाणी प्रेस
अलोपी देवी मार्ग,
प्रयाग-राज (उ. प्र.)–२११००

परिचय

'शाक्त-साधना' में जहाँ 'पञ्च-तत्त्व' अनिवार्य हैं, वहाँ यह बात भी अनिवार्य है कि 'भाव - त्रय' और 'आधार-सप्तक' का सम्यक् विचार करके ही उनका उपयोग हो। परन्तु इस प्रकार का विचार करना सहज नहीं है। इसके लिए आगम-निष्णात सद्-गुरुओं के सत्सङ्ग की आवश्यकता है। दुर्भाग्य से सद्-गुरुओं का तो अभाव है ही, आगमों का भी अभाव हो गया है। यही कारण है क 'शाक्त-साधना' में मन - मानी का बोल-बाला हो गया है।

अतः शाक्तों का यह एक-मात्र कर्तव्य है कि वे अपने धर्म की वर्तमान परिस्थिति पर भले प्रकार विचार करें और उसको समुन्नत करने के लिए मन-मानी तथा धाँधली को छोड़कर ईश-वाक्य-रूप पवित्र आगमों के वचनों पर अपनी पूर्ण श्रद्धा स्थापित करें।

इसी उद्देश्य से प्रस्तुत पुस्तिका प्रकाशित की जा रही है। आशा है कि इससे 'पञ्च - तत्त्वों के महत्त्व' को पाठक अधिकाधिक हृदयङ्गम कर सकेंगे।

—'कुल-भूषण'

अ-नु-क्र-म

१—परिचय ... ३

२—तत्त्व-विवेचन (मकार-पञ्चक) ... ५

३—पञ्च-मकारों का महत्त्व और शोधन २०

४—प्रकाशकीय ... २२

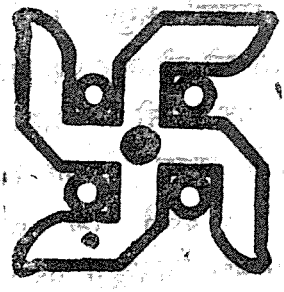

तत्त्व-विवेचन

प्र० : सुनते हैं कि श्रीवशिष्ठ मुनि ब्रह्मा जी के 'मानस पुत्र' थे ?

उ० : हाँ, वे ब्रह्मा जी के 'मानस पुत्र' थे।

प्र० : ब्रह्मा जी के अन्य 'मानस पुत्र' जैसे नारद, सनत्-कुमार आदि ने तो संसार को मिथ्या समझकर तपश्चर्या के निमित्त वन - गमन किया और भोगों का सर्वथा त्याग किया। वशिष्ठ जी ने ऐसा क्यों नहीं किया ? वे भी तो ब्रह्मा जी के 'मानस पुत्र' ही थे ? कहते हैं कि उनके तो स्त्री-पुत्र थे !

उ० : आपका यह प्रश्न महत्त्व - पूर्ण है। इसका रहस्य यदि जानना हो, तो आपको 'रुद्रयामल तन्त्र' तथा 'ब्रह्म-यामल' ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिए। इनमें वशिष्ठ तथा बुद्ध की कथा पढ़ने योग्य है।

प्र० : वह कथा किस प्रकार है ? आप ही सुना दीजिए।

उ० : सुनिए, कथा इस प्रकार है—ब्रह्मा जी के पुत्र वशिष्ठ जी ने एकान्त स्थल में रह कर अत्यन्त कठोर तप किया। ६००० वर्ष तक कठोर तप करने पर भी उन्हें गिरिजा का साक्षात्कार नहीं हुआ। वे खिन्न होकर ब्रह्मा जी के पास गए और प्रार्थना की—'मुझे कोई अन्य मन्त्रोपदेश कीजिए। इस विद्या से मुझे सिद्धि-लाभ होता नहीं दिखता, अन्यथा मैं इसको आपके ही समक्ष कठोर शाप से शापित करूँगा।' ब्रह्मा जी ने उन्हें रोककर उत्तर दिया—'हे योग-दत्त पुत्र ! ऐसा न करो। तुम फिर पूर्ण मनो-योग से उस जगदम्बा का अर्चन करो, तभी वह प्रत्यक्ष होकर तुम्हें वर प्रदान करेगी। वह महा-शक्ति सब दुःखों से त्राण करनेवाली है।

वह करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाश-मान, करोड़ों चन्द्रमाओं के समान सु-शीतल और करोड़ों तड़ित्-पुञ्जों के सदृश है। महा-नील-वर्णा है। वह काल-कामिनी सबकी आदि है। उसमें धर्माधर्म कुछ भी नहीं। वह सर्व-रूपिणी है। उसे शुद्ध चीनाचार प्रिय है। वह शक्ति-चक्र की प्रवर्त्तिका है। उसका माहात्म्य अनन्त है। वही संसार-सागर की तरणी है। वह स्वयमेव बुद्धि-रूपा है। वह अथर्व-वेद-साक्षिणी है। पुत्र! तुम क्यों इतने उतावले होकर शाप देने को तैयार हुए हो? उस महा-शक्ति की अनन्य-चेता होकर उपासना करो।

अपने गुरु के इन वचनों को सुनकर वशिष्ठ जी फिर तपस्या करने समुद्र-तट पर चले गए। पूरे एक सहस्र वर्ष फिर उन्होंने मन्त्र का जप किया, परन्तु उनको कोई आदेश न मिला। मुनि ने क्रुद्ध होकर महा-विद्या (तारा) को कठोर शाप दिया। इस पर कुलेश्वरी महा-विद्या ने, जो योगियों के भय को नाश करनेवाली हैं, प्रकट होकर कहा—'क्यों विप्र! तुमने निष्कारण शाप क्यों दिया? तुम न तो मेरे 'कुलागम' को ही समझते हो, न पूजा-पद्धति ही जानते हो; केवल योगाभ्यास से ही किस प्रकार देवता या मनुष्य मेरे चरण - कमलों का दर्शन प्राप्त कर सकते हैं? मेरी उपासना कठोर तप तथा काया - कष्ट से नहीं की जा सकती। मेरी 'कुलागम' की उपासना पुण्यों तथा वेदों से भी ऊँची है (अर्थात् वेद पशु-भाव-परक हैं)। महा-चीन (जो बौद्ध देश है) में जाओ और 'अथर्व - वेद' के अनुसार चलो। वहाँ जाकर 'चीनाचार' से उपासना करने पर तुमको मेरे पद-कमलों (जो स्वयं ही महा - भाव हैं) का साक्षात्कार होगा और तुम 'कुल-ज्ञानी' तथा 'महा-सिद्ध' बन सकोगे।'

यह कह कर भगवती अन्तर्धान हो गईं। महा-विद्या सरस्वती (नील-सरस्वती) से यह सुनकर वशिष्ठ मुनि 'महा-चीन'

में गए, जहाँ बुद्ध भगवान् प्रतिष्ठित हैं और बुद्ध भगवान् को बार-बार प्रणाम करके मुनि ने कहा—'हे बुद्ध-रूपी शङ्कर ! मैं ब्रह्मा का पुत्र वशिष्ठ आपकी शरण में आया हूँ। मेरा मन भ्रम-पूर्ण है। मैं यहाँ महा-देवी की साधना करने आया हूँ। मैं 'सिद्धि'-प्राप्ति के मार्ग से अनभिज्ञ हूँ। आप 'दिव्याचार' के ज्ञाता हैं, परन्तु आपके आचार को देख कर मेरे हृदय में नाना प्रकार के भय उत्पन्न हो रहे हैं (वशिष्ठ जी ने यहाँ पञ्च-मकार—मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा, मैथुन का सेवन देखा)। मेरे मन से, जो वैदिक आचारों की तरफ झुका हुआ है, इन भयों को दूर कीजिए।

हे महाराज ! आपके स्थान में तो मैं वेद-बहिष्कृत आचारों का ही प्राधान्य देख रहा हूँ (मुनि को उस समय यही विश्वास था कि ये आचार वेद-विरुद्ध हैं)। यह क्या बात है कि श्रेष्ठ दिगम्बर सिद्ध-गण रक्त-पानोद्यत होकर मद्य-मांस का सेवन कर रहे हैं और रूपवती रमणियों से केलि कर रहे हैं ? सर्वदा मांसासव से पूर्ण तृप्त होकर इनकी आँखें लाल हो रही हैं ! ऐसे महा-सिद्धों के, जो प्रसन्न होने पर वर देने को और अप्रसन्न होने पर विनाश करने को समर्थ हैं, इन वेद-विरुद्ध आचारों पर किसकी श्रद्धा हो सकती है ? इस प्रकार की प्रवृत्तियों से मन-शुद्धि कैसे सम्भव है ! बिना 'वेदाचार' के कैसे सिद्धि हो सकती है ?

बुद्ध भगवान् बोले—हे वशिष्ठ ! तुम उस 'कौल-मार्ग' को सुनो, जिसके विज्ञान मात्र से ही मनुष्य अल्प काल में रुद्र-वत् हो जाता है। मैं उस 'कुल-शुद्धि' प्रदान करनेवाले आगम-सार को तुमसे कहूँगा।

पहले 'वीराचारी' को शुद्ध विवेक-युक्त और सर्व प्रकार पशु-भाव-रहित होना चाहिए। पशु-सङ्ग का सर्वथा परित्याग करके

एकान्त-वास करे, काम-क्रोधादिक षड्-रिपुओं को दूर करे। 'हठ-योग' का अभ्यास करे। 'वेदाध्ययन' करके मन को सदा औदार्यादि उन्नत वृत्तियों की ओर लगाए। 'प्राणायाम' का अभ्यास करके क्रमशः अपनी मनो-वृत्तियों को विनष्ट कर दे। 'प्राणायाम' का अभ्यास बढ़ाता जाए।

अभ्यास करते-करते उसकी ऐसी अवस्था हो जाएगी कि उसके शरीर से स्वेद-प्रवाह होने लगेगा। यह अवस्था अधम है। इससे उच्च-तर अवस्था में शरीर काँपने लगता है, यह मध्यम अवस्था है। सर्वोच्च अवस्था में साधक भूमि से ऊँचा उठ जाता है। यह भूमि-त्याग की अवस्था परा है।

इस प्रकार 'प्राणायाम' सिद्ध हो जाने पर साधक योगी हो जाता है। तब उसे 'मौनावलम्बन' कर शिव, कृष्ण, ब्रह्मा आदि की एकान्त भक्ति करनी चाहिए और मन में ऐसी धारणा करनी चाहिए कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव वायु के समान चञ्चल हैं। तब साधक को अपना मन 'आदि-शक्ति' पर स्थित करना चाहिए। यह 'आदि-शक्ति' चित्-स्वरूपा है।

इसके बाद साधक को 'महा-वीर-भाव' से 'कुलाचार' के अनुसार शक्ति-चक्र, वैष्णव-सत्त्व-चक्र तथा नव-विग्रह और सकल दुःख-निवारिणी सकल-सुख-दायिका सर्वोत्तमा प्रत्यक्ष देवता कुल-कात्यायिनी का अर्चन करना चाहिए। यह कुल-कात्यायिनी जगज्जननी चिद्-रूपा है। यही ज्ञान की आधार है। यही आनन्द की आधार है। कोटि-विद्युत्-प्रतीकाशा इसी 'महा-शक्ति' से सब तत्त्व बने हैं। यही अष्टादश भुजाओंवाली रौद्री शक्ति है, जो सुरा तथा मांस के पर्वतोपम ढेरों को पसन्द करती है। मनुष्य को उसकी शरण में रहकर 'कुल-मार्ग' से उसके मन्त्र की साधना करनी चाहिए।

त्रैलोक्य में कौन ऐसा है, जो इस मार्ग से अन्य मार्ग बता सकता है ! इसी मार्ग से साधना कर जगदम्बा की कृपा से ब्रह्मा लोकों की उत्पत्ति, विष्णु स्थिति और शिव संहार करने को समर्थ हैं। इसी वीराचार के प्रताप से दिक्-पाल भी रुद्रोपम हो गए। 'वीर-भाव' से साधना करने पर एक ही मास में आकर्षिणी सिद्धि प्राप्त हो जाती है। दो मास के अभ्यास से साधक दिक्-पालोपम, पाँच मास के अभ्यास से काम-देव के समान और छः मास में रुद्र के समान हो जाता है।

इस 'आचार' का फल अन्य सभी आचारों से उत्कृष्ट-तम है। इसे शक्ति-सहित करे, तो ब्राह्मण छः मास में पूर्ण योगी हो जाए। बिना शक्ति के जब शिव भी कुछ नहीं कर सकते, तो बहुत थोड़ी बुद्धिवाले मनुष्यों के विषय में क्या कहा जाय !

इस प्रकार कह कर बुद्ध - रूपी शङ्कर ने वशिष्ठ मुनि से 'वीराचार' का साधन कराया और मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा तथा मैथुन - इन पञ्च-मकारों से जगदम्बा का अर्चन करने से वे पूर्ण योगी हुए।

प्र० प्रश्न तो यह था कि वशिष्ठ जी ने विवाह कर सन्तानोत्पत्ति की या नहीं अर्थात् उन्होंने 'प्रवृत्ति-मार्ग' को अपनाया या नहीं ? आपके कथानक से यह स्पष्ट नहीं है कि उन्होंने गृहस्थाश्रम किया, एकदम 'निवृत्ति - मार्ग' के अनुयायी नहीं बने।

उ० यह बात तो शास्त्रों में प्रसिद्ध है कि वशिष्ठ जी ने विवाह किया, उनकी स्त्री का नाम अरुन्धती था। उनके कई पुत्र भी हुए। वे 'प्रवृत्ति - मार्ग' के पोषक थे। उनके 'योग-वाशिष्ठ ग्रन्थ' (जिसको 'महा-रामायण' भी कहा जाता है) से स्पष्ट है कि दशरथ-नन्दन भगवान् रामचन्द्र जी को जब वैराग्य हो गया और गृहस्थाश्रम छोड़कर वे संन्यास लेने

के लिए उद्यत हो गए, तो राजा दशरथ के कहने पर वशिष्ठ जी ने श्रीराम जी को उपदेश देकर उन्हें राज्य करने तथा प्रवृत्ति-मार्ग को स्वीकार करने के लिए बाध्य किया था।

प्र० उपर्युक्त कथानक में कहा गया है कि बुद्ध - रूपी शङ्कर ने वशिष्ठ मुनि से 'वीराचार' का साधन कराया और मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा तथा शक्ति (मैथुन) द्वारा भगवती का अर्चन करने पर वे पूर्ण योगी हुए। यहाँ भी प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्यों ऐसे गन्दे लोक-विगर्हित पदार्थों से देवताओं का पूजन किया जाता है ?

उ० यदि विद्वत्-समाज जरा बारीकी से धर्म-शास्त्रों का अध्ययन और मनुष्य के नित्य के सामाजिक जीवन का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करे, तो उसे पता लग जाएगा कि ये 'पाँच मकार' मानव की भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिए आवश्यक हैं और सभी धर्मों ने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से इनका प्रतिपादन किया है।

सर्व-प्रथम मैथुन को ही लीजिए। 'कालिका पुराण' का कथन है कि 'जब ब्रह्मा जी ने सृष्टि उत्पन्न की, तब उनके हृदय की अत्यन्त कोमल भावना के फल-स्वरूप एक त्रैलोक्य-मोहिनी रमणी उत्पन्न हुई, जिसको देखकर ब्रह्मा जी के मानस पुत्रों का क्या कहना, स्वयं ब्रह्मा जी विचलित हो उठे और इसके फल-स्वरूप एक त्रैलोक्य - मोहन पुरुष गौर वेश में इक्षु - धनुष तथा पाँच पुष्प-वाणों से सज्जित होकर ब्रह्मा जी के मानस में उत्पन्न हुआ। ब्रह्मा जी ने स्त्री का नाम 'रति' और पुरुष का नाम 'काम' रख कर दोनों को विवाहित कर दिया। इसी रति-काम मिथुन में सृष्टि का आदि-भाव अन्तर्निहित है। 'रति - काम' के उत्पन्न होने से पूर्व ब्रह्मा जी मानसी सृष्टि करते थे, पर इस कार्य में

भरोसा ही क्या था ! प्रचोदना तो कुछ थी ही नहीं ! जगज्जननी ने यह देख कर अपनी स्व - शक्तियों से रति - काम को उत्पन्न किया, जिससे उसकी सृष्टि चलती रहे । संसार के जन्तु मात्र काम के कोमल पुष्प-शरों से बिद्ध हो बरबस सृष्टि उत्पन्न करने को बाध्य हों । फिर इस सम्भोगानन्द के वश-वर्ती होकर बनाए हुए इस संसार-चक्र में घूमते रहें । यही जगदम्बा की इच्छा है । 'गीता' में कहा है --

ईश्वरः सर्व-भूतानां, हृद्देशेऽर्जुन ! तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्व-भूतानि, यन्त्रारूढानि मायया ॥

अर्थात् परमात्मा (जगज्जननी) सब प्राणियों के हृदय-देश में विराज कर उन्हें अपने माया-यन्त्र में बैठाकर घुमाते रहते हैं ।

जगज्जननी की यह आज्ञा है कि गृहस्थ बनो और सन्तानोत्पत्ति करके उसका पालन करो, न कि संसार त्याग कर संन्यासी बन जाओ । जगज्जननी अपनी भिन्न - भिन्न शक्तियों से जीव का आकर्षण करके संसार में प्रवृत्त करती हैं । इसीलिए 'श्रीदुर्गा सप्त-शती' में सुमेधा ऋषि ने राजा सुरथ से कहा है—

ज्ञानिनामपि चेतांसि, देवी भगवती हि सा ।
बलादाकृष्य मोहाय, महा-माया प्रयच्छति ॥

अर्थात् यह महा-माया भगवती बड़े-बड़े ज्ञानियों के चित्तों को भी बल-पूर्वक खींच कर उन्हें मोह में डाल देती है ।

किसी भी धर्म ने सम्भोग को निन्दनीय नहीं कहा है । स्त्री-पुरुष का विवाह - संस्कार इसी के लिए तो होता है । यदि यह बन्द कर दिया जाए, तो सृष्टि ही कैसे चले ? सृष्टयुत्पत्ति 'प्रकृति' और विनाश 'विकृति' है । अपने विपरीत चलनेवाले को

प्रकृति कैसे सह सकती है ? सम्भोग प्राकृतिक कर्म होने से उत्तम कर्म सिद्ध है। जब यह प्रत्येक प्राणी के लिए आवश्यक प्राकृतिक कार्य है, तो इसका करना प्रकृति (जगदम्बा) का पूजन ही तो है। पूजन का अर्थ ही है 'पूजित का परितोष'।

विवाह सम्भोग के लिए ही होता है, इसके लिए व्यर्थ की दलील करना पिष्ट-पेषण मात्र ही है। सारे संसार के अब तक के प्रचलित धर्म - ग्रन्थों में देखिए, आपको मिलेगा कि इतने अधिक आडम्बर तथा उत्सव और पूजनोपचार के साथ मनुष्य का कोई संस्कार नहीं होता, जितना 'विवाह-संस्कार' में किया जाता है। यदि यह संस्कार निन्दित ही होता, तो इसके लिए इतना आडम्बर और उत्सव करने की क्या आवश्यकता थी ?

हमारे आर्ष ग्रन्थों के अनुसार सम्भोग एक यज्ञ है। आज-कल हिन्दू अग्निहोत्रियों का जो कर्म-काण्ड प्रचलित है, उसमें भी यज्ञ के समय जब अग्नि-स्थापन किया जाता है, तब अपने देवता के कामोन्मत्त तथा उसकी शक्ति के ऋतु-मती होने की भावना की जाती है, यज्ञ-वेदी अथवा कुण्ड को देवी की योनि और उसमें जो अग्नि स्थापित की जाती है, उसको देवता का वीर्य माना जाता है और इसे अग्नि का 'गर्भाधान-संस्कार' कहते हैं। 'नारद-पञ्चरात्रोक्त' होम-विधि के अनुसार लक्ष्मी को ऋतु-मती कल्पना करे तथा विष्णु को सम्भोगोद्यत और तब अरणी-जन्य अग्नि को विष्णु-वीर्य समझकर एवं यज्ञ-कुण्ड को लक्ष्मी की योनि समझकर जमीन में घुटने टेक कर अग्नि - कुण्ड में डाले।

तात्पर्य यह कि कोई भी धर्म आज तक संसार में ऐसा नहीं हुआ, जिसने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से इसका समर्थन न किया हो। संसार भर में भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है, जहाँ ऐसे मत-मतान्तर भी हैं, जिनमें प्रत्यक्ष रूप से इसकी निन्दा की गई

है, परन्तु परोक्ष रूप से इसका प्रतिपादन किया है। बौद्ध और जैन मत में यद्यपि संसार-त्याग ही धर्म है और गृहस्थी करना पाप है, परन्तु इन धर्मों के धर्म-गुरुओं को भी गृहस्थों को अपना चेला बनाना पड़ा। बौद्धों ने तो 'वाम-मार्ग' को इतना अधिक ग्रहण किया है कि शायद ही कोई बौद्ध ग्रन्थ हो, जिसमें 'वीराचार' तथा 'पञ्च-मकार' की महिमा न गाई गई हो।

इस प्रकार स्पष्ट है कि स्त्री-सम्बन्ध सब धर्मों, समाजों और जातियों में अच्छा कार्य ठहराया गया है और जिन धर्मों (जैन, बौद्ध) ने इसको बुरा बताया है, वे भी और उनके अनुयायी भी इसको नहीं छोड़ सके, बल्कि इस समय तो जैन और बौद्ध-धर्मावलम्बी ब्रह्मचारी बहुत ही कम देखने में आते हैं।

प्र० हाँ, मैथुन-सम्बन्धी शङ्का का तो निराकरण हो गया। यह तो शास्त्रोक्त एक पावन कृत्य है, पर मदिरा या सुरापान तो महा-पाप है। मद्य-मांस उत्तजक भोजन ही नहीं, हिंसा भी है। ये क्यों कर उत्तम समझे जा सकते हैं?

उ० संसार के सभी धर्मों का स्रोत 'वेद' हैं। इनके परे स्मृतियाँ, पुराण, इतिहास आदि अन्य शास्त्र। तन्त्र-ग्रन्थों में तो पञ्च-मकारों का विशद् वर्णन मिलता है। निम्नाङ्कित प्रमाणों से मद्य-मांस के उपयोग का प्रश्न स्पष्ट हो जाएगा—

वैदिक आर्य 'सोम-यज्ञ' तथा 'हविर्यज्ञ' किया करते थे। इनमें एक 'सौत्रामणि' था, जिसमें मद्य से यज्ञ-पूजनादि होता था और मद्य-पान होता था (देखिए 'शतपथ ब्राह्मण', ५-१-१३)। 'शतपथ ब्राह्मण' में यह भी कहा है कि 'मद्य' यजमान को पवित्र करता है और मद्य स्वयं पवित्र है। 'ऋग्वेद' के पाँचवें मण्डल में ऋषि काशिवान ने मद्य की बहुत प्रशंसा की है। 'तैत्तिर्य-संहिता' (३-१-४) में पशु के

मांस को 'हवि' कहा है। 'ऋग्वेद - संहिता', ५-२-२२ में अग्नि में पशु के मेद का 'होम' करने का विधान कहा गया है। 'ऐतरेय ब्राह्मण' (६-८) के अनुसार आर्यगण नर - बलि, अश्वालम्भ आदि भी करते थे। 'कात्यायन श्राद्ध-कल्प-सूत्र' की कण्डिका ७ तथा ८ में श्राद्ध-हवि की पूरी सूची दी गई है। छाग, उष्ट्र, मेष, मत्स्य, हरिण, मेढ़ा, कछुआ, वराह, महिष इत्यादि स्थल, जल तथा नभ-चर प्राणियों के मांस को श्राद्ध-हवि बतलाया गया है। इनके मांस से पितरों को अक्षय तृप्ति होती है। इन्हीं को स्मृति-कारों ने श्राद्ध-हवि माना है। वैदिक ग्रन्थों में एक नहीं, सहस्रों प्रकरण मद्य-मांस के प्रयोगों के हैं। उपर्युक्त थोड़े से उद्धरण उदाहरण-स्वरूप दिए गए हैं। विशेष जानने के लिए 'ब्राह्मण'-ग्रन्थों का अध्ययन आवश्यक है।

'ब्रह्माण्ड पुराण', अध्याय १६ में श्राद्ध हवि में मांस - मत्स्य का प्रयोग वैसा ही बताया है, जैसा कि 'मनु-स्मृति' में (देखिए श्लोक २ से ६ तक)। 'भविष्य पुराण', ब्राह्मण पर्व, अ० १७३ में श्रीकृष्ण का अपनी रानियों के साथ द्वारिकापुरी में मद्य-पानादि का वर्णन है। 'लिङ्ग पुराण' पूर्व भाग, अध्याय ७८ में लिखा है कि यज्ञ में पशु-हिंसा धर्म है और यज्ञीय पशु स्त्री नहीं होना चाहिए।

'मार्कण्डेय पुराण के अन्तर्गत 'दुर्गा सप्तशती' में स्वयं देवी ने अपने श्री मुख से कहा है—'पशु, पुष्प, धूप, दीप से मेरी पूजा करनी चाहिए' (अध्याय १२)।

महिषासुर-युद्ध में देवी ने मद्य-पान किया और फिर नशे से लड़खड़ाती वाणी में महिषासुर को डाँटा (अध्याय ३)।

'श्रीमद्-भागवत पुराण', स्कन्ध ४, अध्याय २५, श्लोक ६ में लिखा है—'धार्मिक कार्यों के निमित्त राजा मृगया में मेध्य

(जिनका मांस खाने योग्य हो) पशुओं का उतनी ही संख्या में वध करे, जितना पर्याप्त हो।

लोभ-वश आवश्यकता से अधिक का वध न करे, यह नियम है। इसी 'भागवत' ५-१५-१२ में लिखा है 'राजा गय के यज्ञ में देवराज इन्द्र ने इतना अधिक सोम-पान किया कि वे उन्मत्त हो गए'। 'श्रीमद्-भागवत' १० (उत्तरार्द्ध) ६५, श्लोक १६-२० में देखिए—

'जब श्री बलराम जी गोपियों के साथ ब्रज-वनों में यमुना के तीर भ्रमण कर रहे थे, तब उनके लिए वरुण ने वारुणी देवी (सुरा) को वृक्ष-कोटर में भेजा। उसकी उन्मत्त करनेवाली गन्ध को, जो वायु में फैल रही थी, सूँघ कर ब्रज की स्त्रियों के साथ बलराम जी वृक्ष-कोटर पर पहुँचे और स्त्रियों के साथ उस वारुणी को पिया, जिससे नशे के कारण उनके नेत्र विह्वल हो गए।' पुनः 'श्रीमद्-भागवत' ११-३०, श्लोक १२-१३ से स्पष्ट है कि यादवों ने प्रभास क्षेत्र में एकत्रित होकर 'मैरेय' नाम की मद्य पी और उससे मदोन्मत्त होकर आपस में लड़कर नष्ट हो गए।

प्र० हाँ, तन्त्र-ग्रन्थों के अनुसार तो देवी की उपासना में मद्य-मांस का उपयोग उपयुक्त समझा जा सकता है, पर 'वैष्णव' मतानुसार तो मद्य-मांस कदापि वैध नहीं समझे जा सकते। वैष्णव लोग इन वस्तुओं को अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखते हैं। शाक्तों के लिए तो भले ही उपयोगी हों।

उ० वैष्णव लोग यद्यपि इन वस्तुओं को जघन्य पाप समझते हैं, पर भारतवर्ष में प्रसिद्ध वैष्णव पीठ, जो श्री जगन्नाथ-पुरी में है, उसमें भगवान् को जो भोग लगता है, वह मद्य से प्रोक्षित किया जाता है। यहाँ पर कलकत्ता हाई कोर्ट के चीफ जस्टिस सर जान वुडरफ के ही शब्द, जो उन्होंने

अपनी पुस्तक 'शक्ति एण्ड शाक्त' में लिखे हैं, यहाँ उद्धृत कर देना उचित होगा। वे लिखते हैं—

'''इस प्रसङ्ग में मैं यह लिखना भी उचित समझता हूँ कि दुर्गा-पूजा के अवसर पर तो देवता का प्रसाद मद्य से प्रोक्षित किया ही जाता है और इस प्रसाद को शाक्त ही नहीं, शाक्तातिरिक्त लोग भी ग्रहण करते हैं, परन्तु पुरी के जगन्नाथ जी के मन्दिर में भी प्रसाद पर मद्य छिड़का जाता है (यद्यपि यह बात सर्व-साधारण नहीं जानते)। ('शक्ति एण्ड शाक्त', पृष्ठ ३४६)

इसी बात को देखते हुए 'श्रीमद्-भागवत', ११-५-११ को भी यह मत स्थिर करना पड़ा कि—

लोके व्यवायामिष मद्य-सेवा नित्यास्ति जन्तोर्नहि तत्र चोदना।
व्यवस्थितस्तेषु विवाह - यज्ञ - सुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा॥

अर्थात् इस दुनिया में किसी से यह कहना नहीं पड़ता कि तुम सम्भोग, मांस और मदिरा का सेवन करो। ये बातें मनुष्य को स्वभाव से ही प्रिय हैं। इन तीनों की कुछ व्यवस्था कर देने के लिए अर्थात् इनका उपयोग कुछ मर्यादित करने के लिए (शास्त्रों ने) अनुक्रम से विवाह, सोम-याग और सौत्रामणि यज्ञ की योजना की है, परन्तु इस पर भी निवृत्ति इष्ट है। इसी आशय की आज्ञा 'मनु-स्मृति'-ग्रन्थ में मिलती है। मनु महा-राज ने कहा है—

'न मांस - भक्षणे दोषः, न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषां भूतानां, निवृत्तिस्तु महत् फलम्॥'

प्र० हिन्दू-धर्म के अतिरिक्त भी तो संसार में अनेक धर्म हैं। क्या उनमें भी मद्य-मांस को वैध माना है?

उ० ईसाई - मुसलमान, यहूदियों के भी यही हाल हैं। ईसाई और यहूदियों में ईश्वर की पूजा में मांस - मद्य का प्रयोग

होता है। मुसलमानों में यद्यपि इह लोक में मद्य - सेवन वर्जित है, परन्तु स्वर्ग में मुसलमानों को मद्य पीने को मिलती है। मांस के विषय में तो कहना ही क्या! इनके बकरीद के त्योहार से सभी परिचित हैं।

अब स्पष्ट हो गया होगा कि 'पञ्च-मकार' का सेवन किसी भी घर में निन्दनीय नहीं है। हाँ, इनका अमर्यादित उच्छृङ्खल सेवन नहीं होना चाहिए। सम्भोग अपनी पत्नी से करना चाहिए, पर-पत्नी से नहीं। मद्य-मांसादिक (अन्य मकार-चतुष्टय) को अपनी जिह्वा-तृप्ति के हेतु सेवन नहीं करना चाहिए। अब ऐसी दशा में वीराचारियों की उपासना में इन मकारों का प्रयोग करने के कारण उन्हें घृणा की दृष्टि से क्यों देखा जाता है, यह समझ में नहीं आता!

'कुलाचार' साधना का मार्ग है। इसमें 'पञ्च-मकार' का प्रयोग केवल अष्ट-पाशों का छेदन कर जीव को स्वतन्त्र —उन्मुक्त करने के निमित्त ही किया जाता है।

प्र० आपने कहा कि मञ्च-मकारों का सेवन केवल अष्ट - पाशों का छेदन कर जीव को स्वतन्त्र उन्मुक्त करने के निमित्त ही किया जाता है। ये अष्ट - पाश क्या हैं, जिनमें जीव बँधा हुआ है? उनका विवेचन कीजिए।

उ० 'कुलार्णव तन्त्र' का कथन है—

घृणा लज्जा भयं शङ्का, जुगुप्सा चेति पञ्चमम्।
कुलं शीलं तथा जातिः, अष्ट-पाशाः प्रकीर्तिताः॥
पाश-बद्धः भवेज् जीवः, पाश-मुक्तो सदा-शिवः॥

ये आठ पाश पशु-पाश कहलाते हैं। जीव इन पाशों से आबद्ध होने के कारण पार्थिव भोगों को ही चरम सुख

समझता है और संसार के आवर्त में घूमता रहता है। इस जीव को शिवत्व प्राप्त करने हेतु साधना करके इन पाशों को काटना होता है। पाश - मुक्त होने से जीव स्वयं ईश्वर हो जाता है।

साधक की जैसी मनो-वृत्ति रहती है, उसी प्रकार की साधना करने से उसका श्रेय सम्भव है। जिस पर उक्त अष्ट-पाशों का प्रभाव है, उसके लिए सर्व-काल और सर्वावस्था में साधन कर सकना असम्भव है। उसका मन सांसारिक पार्थिव प्रवृत्तियों के वश में होने से अध्यात्म की ओर नहीं जा सकता। अतएव जब तक चित्त निर्मल नहीं हुआ, मनो-वृत्तियों पर विजय प्राप्त न हो सकी, तब तक साधना पशु-भाव से करनी होगी। नित्य - स्नान, सन्ध्या - वन्दन, आचार-शुद्धि, आहार-शुद्धि—सब कुछ करना होगा।

'पश्वाचार' विशुद्ध वैष्णवाचार है। पश्वाचारी त्रि-सन्ध्य देव-पूजा, त्रि-सन्ध्य जप करे। पशु-साधना में मद्य-मांसादि अपने प्रकृत - रूप में एकदम वर्ज्य हैं। केवल इससे आगे की 'वीर - भाव' की साधना में ही साधक इनके सेवन का अधिकारी है।

प्र० यह कैसे पहचाना जा सकता है कि 'पशु-भाव' की साधना करते-करते साधक के अष्ट-पाश ढीले पड़ गए हैं और वह अब 'वीर-भाव' की साधना का अधिकारी हो गया है?

उ० 'पशु-भाव' की साधना करते-करते जब पशुत्व के बन्धन ढीले पड़ जाते हैं, तब 'कुलार्णव तन्त्र' में कथित निम्नाङ्कित लक्षण साधक में उदय होने लगते हैं—साधक का हृदय आर्द्र होने लगता है। प्रसन्न, सन्तुष्ट, निर्द्वन्द्व, मात्सर्य - रहित, शान्त, जगदम्बा की भक्ति की चर्चा चलने पर जिसको रोमाञ्च हो उठे, वाणी गदगद् हो जाए। इन्हीं सब लक्षणों से पह-

चाना जा सकता है कि 'पशु-भाव' वाला साधक अब 'वीर-भाव' की साधना का अधिकारी हो गया है। गुरु उसकी परीक्षा करके ही उसको 'वीर-भाव' की साधना में दीक्षित करता है।

प्र० आपने ऊपर कहा है कि पञ्च-मकारों का सेवन अमर्यादित नहीं होना चाहिए। इससे आपका क्या अभिप्राय है ?

उ० अमर्यादित से अभिप्राय है कि पञ्च-मकारों का सेवन विधि-वत् करे। अविधि नहीं। अविधि सेवन करना महा-पाप है। पञ्च-मकारों के सेवन के विषय में वाम-मार्गियों के नियम अत्यन्त ही कठिन हैं और जितनी अधिक रोक इनके प्रयोग के सम्बन्ध में 'वीराचार' की साधना से हो सकती है, उतनी अन्य धर्मों तथा आचारों की साधना से नहीं।

प्र० 'वीराचार' - साधना में पञ्च-मकारों का उपयोग होता है। मकार पाँच ही क्यों हैं, कम-ज्यादा क्यों नहीं हो सकते ?

उ० मुख्य तत्त्व पाँच कहे जाते हैं--१ आकाश, २ वायु, ३ अग्नि, ४ जल और ५ पृथ्वी। इन्हीं पञ्च-तत्त्वों से विराट् ब्रह्माण्ड बना है और इन्हीं के द्वारा प्राणी मात्र की रचना हुई है। ये तत्त्व महा-माया (मूल प्रकृति) की कृति हैं। इनमें पोषक और संहारक दोनों शक्तियाँ विद्यमान हैं। अतः इनका उपयोग यदि उचित रूप से नहीं किया गया, तो ये ही लाभ-दायक होने के स्थान पर हानि-कारक सिद्ध हो सकते हैं। इनका विधि-वत् प्रयोग करना मनुष्य मात्र का कर्तव्य है। इसी उद्देश्य से भगवान् शङ्कर ने इन स्थूल तत्त्वों का लाभ समझाने के लिए स्थूल रूप में मदिरा (अग्नि-तत्त्व), मांस (पृथ्वी-तत्त्व), मीन (जल - तत्त्व), मुद्रा (वायु-तत्त्व) और मैथुन (आकाश-तत्त्व) का आविर्भाव 'पञ्च-मकारों' के नाम से तन्त्र-शास्त्र में किया है। ❀❀

परिशिष्ट

पंच-मकारों का महत्त्व

यह एक निर्विवाद बात है कि शाक्त-धर्म में पञ्च-मकारों को विशेष महत्व प्राप्त रहा है। उनके बिना शाक्त-धर्म निष्प्राण-सा प्रतीत होगा। ऐसे महत्व-पूर्ण मकारों का खुलकर प्रतिपादन करने में बड़े-बड़े कौलाचार्य झिझकते रहते हैं क्योंकि पिछली शताब्दियों में इन मकारों में से आदि के दो 'मकारों'—'मद्य' और 'मांस' का घोर विरोध ही इस देश में नहीं हुआ, अपितु उनका निषेध करने में क्या धार्मिक, क्या सामाजिक और क्या राजनैतिक—प्रायः सभी प्रकार के प्रतिबन्धों को प्रयोग में लाया गया। इन प्रतिबन्धों के फल-स्वरूप 'मद्य-मांस' का सेवन करना अवश्य सीमित हो गया और लोग छिपाकर इन्हें प्रयोग में लाने लगे।

'मद्य-मांस' के विरोधियों की शक्ति क्षीण होते ही इन दोनों के प्रेमी पुनः पूर्व-वत् खुलकर इनका सेवन करने लगे, किन्तु जो धर्म के अंकुश को माननेवाले थे, उन्होंने इनके प्रति 'गोपनीयता' का भाव बनाए रखना ही उचित माना। यही कारण है कि पक्के शाक्त-धर्मावलम्बी तक प्रकट रूप में आज भी उक्त मकारों का समर्थन करने में अपने को असमर्थ-सा पाते हैं।

'चण्डी' पत्रिका के द्वारा 'गोपनीयता' के इस भ्रामक जाल को छिन्न-भिन्न करने का निरन्तर प्रयास किया गया है, जिसका प्रमाण उसकी फाइलों को पढ़कर सहज ही जाना जा सकता है। इस प्रयास में जिन महानुभावों ने 'चण्डी' को अपना

सहयोग प्रदान किया है, उनमें पूज्य श्री स्वामी दिव्यानन्द जी का प्रमुख स्थान रहा है। आपने पञ्च - मकारों का खुलकर समर्थन किया।

'पञ्च-मकारों' में से एक 'मुद्रा' अर्थात् अन्न-मय पदार्थों के प्रयोग के सम्बन्ध में तो कभी कोई विवाद रहा ही नहीं है। शेष चार मकारों के उपयोग करने में आज उच्छृङ्खलता का जो परिचय देश - वासियों द्वारा दिया जा रहा है, उसे यहाँ स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। यहाँ केवल इतना ही कहना अभीष्ट है कि इन मकारों का 'संयमित' और 'मर्यादित' रूप में प्रयोग कर शाक्त-साधक ही भोग और मोक्ष को करतल-गत कर लेते हैं।

'पञ्च-मकारों' के स्थूल रूपों को लेकर प्रस्तुत पुस्तिका में उपयोगी साहित्य प्रकाशित करने की चेष्टा की गई है, किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि उनके सूक्ष्म रूपों का कोइ महत्व नहीं है। इसके विपरीत सच तो यह है कि उनके सूक्ष्म रूपों का ही सर्वाधिक महत्व है। सूक्ष्म-रूप वस्तुतः 'आधार'-वत् हैं, जिनके सहारे स्थूल रूपों का अस्तित्व स्थिर रहता है। ऐसी दशा में 'पञ्च-मकारों' के सूक्ष्म रूपों को हृदयङ्गम करना तथा पञ्च-मकारों का विधि-वत् शोधनादि करके साधना करना ही प्रत्येक साधक के लिए परमावश्यक है।

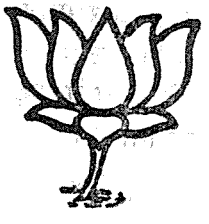

प्रकाशकीय

शाक्त-साधना में 'पञ्च-मकारों' का विशेष स्थान है। ये पाँच 'मकार' पञ्च महा-भूतों के प्रतिनिधि-स्वरूप हैं। इन्हें 'पञ्च-तत्त्व' की भी संज्ञा प्राप्त है। प्रायः लोग इनके महत्त्व को भले प्रकार हृदयङ्गम नहीं कर पाते। साधना में इनकी उपयोगिता को समझाने के लिए विज्ञ पुरुषों द्वारा इनकी अनेक प्रकार से व्याख्या की गई है। किसी ने इनका विवेचन दार्शनिक रूप से किया है, तो किसी ने वैज्ञानिक ढङ्ग से इन्हें स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

पूज्य स्वामी दिव्यानन्द जी ने अपनी इस पुस्तिका में प्रश्नोत्तर के रूप में उक्त तत्त्वों को समझाने का सफल प्रयत्न किया है। इन तत्त्वों के सम्बन्ध में सामान्य रूप से जो शङ्काएँ जिज्ञासु जनों के मन में उठा करती हैं, उन्हीं को प्रश्न - रूप में लेकर पूज्य स्वामी जी ने उनका उत्तर अति सरल सुबोध भाषा में लिखा है। प्रश्नोत्तर की इस शैली से पञ्च-तत्त्व-सम्बन्धी अनेक शङ्काओं का समाधान सहज ही हो जाता है और जिज्ञासु जन 'पञ्च-मकारों' के वास्तविक महत्त्व को सरलता से हृदयङ्गम कर लेते हैं।

मद्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन—इन पाँच 'मकारों' का उपयोग कौल-साधना में किस उद्देश्य से निर्दिष्ट हुआ है, इसका रहस्य इस पुस्तिका को ध्यान से पढ़ने से प्रामाणिक रूप से पाठक की समझ में आ जाता है।

यह रहस्योद्घाटन रुद्र-यामल, ब्रह्म-यामल, योग-वाशिष्ठ, कालिका-पुराण, श्रीमद्-भगवद्-गीता, श्रीदुर्गा सप्तशती, नारद-पञ्चरात्र, शतपथ ब्राह्मण, ऋग्वेद, तैत्तिरीय संहिता, ऐतरेय ब्राह्मण, कात्यायन-श्राद्ध-कल्प-सूत्र, ब्रह्माण्ड-पुराण, मनु-स्मृति, भविष्य-पुराण, लिङ्ग-पुराण, मार्कण्डेय-पुराण, श्रीमद्-भागवत-पुराण, कुलार्णव तन्त्र जैसे आर्ष ग्रन्थों पर आधारित है।

यह पुस्तिका लिखकर पूज्य स्वामी जी ने वास्तव में जिज्ञासु साधकों का बड़ा उपकार किया है। हमें विश्वास है कि इसकी सहायता से बहु-संख्यक पाठकों की अनेक भ्रान्तियों का निवारण होगा और वे संशय-रहित होकर शक्ति-साधना में अग्रसर हो सकेंगे।

२६-५-७५ —'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल

'चण्डी' कार्यालय, प्रयाग—६

साधनोपयोगी साहित्य

हेतु

साधना-माला

विस्तृत जानकारी के लिए सम्पर्क करें–

साधनोपयोगी साहित्य

हेतु

साधना-माला

पढ़ें।

विस्तृत जानकारी के लिए सम्पर्क करें।